National Research Journal of Social Sciences
Volume-10, Issue-2, July-December 2025
PP: 264-273
ISSN: 2348-473X
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 6.74)
Journal Website: www.nrjss.in

मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में कथा-तत्व और फैंटेसी के माध्यम से यथार्थ की अभिव्यक्ति

कुमारी स्मिता
पूर्व शोधार्थी,
विश्विद्यालय हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्विद्यालय, दरभंगा

सारांश

हिंदी कविता के आधुनिक चरण में गजानन माधव मुक्तिबोध एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने कविता को केवल भावाभिव्यक्ति का माध्यम न रहने देकर उसे वैचारिक, मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक यथार्थ का गहनतम दस्तावेज़ बनाया। उनकी लम्बी कविताएँ, विशेषतः अँधेरे में, भूल-गलती, नाशदेवता, कथा-तत्व और फैंटेसी के अद्‌भुत संयोजन के कारण हिंदी कविता को एक नयी आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान करती हैं। इन कविताओं में कथा न तो पारंपरिक रैखिक क्रम का अनुसरण करती है और न फैंटेसी पलायनवाद का। इसके विपरीत दोनों मिलकर एक ऐसा "अंतःयथार्थ" निर्मित करते हैं, जिसमें मध्यवर्गीय बौद्धिक की आत्म-समालोचना, सामाजिक-राजनीतिक विडंबनाएँ, वर्ग-चेतना, भय, अपराध-बोध और ऐतिहासिक जिम्मेदारी के प्रश्न अद्‌भुत कलात्मक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। मुक्तिबोध फैंटेसी के माध्यम से उन दबी हुई, अव्यक्त, भयावह और अक्सर अचेतन में छिपी शक्तियों को दृश्य बनाते हैं, जो सामान्य यथार्थ-चित्रण में छूट जाती हैं। यह शोध-पत्र उनकी लम्बी कविताओं में कथा-संरचना, प्रतीक-प्रयोग, फैंटेसी, स्वप्न-रचना और अतियथार्थवादी दृश्य-बिम्बों की आलोचनात्मक समीक्षा करता है तथा यह सिद्ध करता है कि मुक्तिबोध की काव्य-दृष्टि में कथा और फैंटेसी मिलकर यथार्थ का एक नया, अधिक गहरा और अधिक असुविधाजनक रूप निर्मित करती हैं।

कूट शब्द: मुक्तिबोध, लम्बी कविता, फैंटेसी, यथार्थ, कथा-तत्व, अँधेरे में, मध्यवर्गीय चेतना

1. प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के मध्य में आधुनिक हिंदी कविता जिस रूप में विकसित हुई, उसमें यथार्थ की अभिव्यक्ति के साधन अत्यंत बहुविध हो गए। कविता केवल भावनाओं, सौंदर्य, लय और प्रकृति-वर्णन तक सीमित न रही; वह सामाजिक-राजनीतिक प्रश्नों, ऐतिहासिक परिस्थितियों और मनुष्य की वैचारिक उलझनों का सशक्त माध्यम बन गई। यही वह संदर्भ है जिसमें गजानन माधव मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ हिंदी साहित्य में एक नवीन अध्याय की तरह उपस्थित होती हैं।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2348-473X
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 6.74)
Journal Website: www.nrjss.in

मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ, विशेषकर अँधेरे में, एक जटिल कथा-संरचना पर आधारित हैं, जहाँ घटनाएँ, दृश्य, पात्र और आत्म-संवाद एक बहुस्तरीय कथा-परिदृश्य रचते हैं। यह कथात्मक प्रवाह किसी पारंपरिक कहानी की तरह सरल, सीधी या रैखिक नहीं है, बल्कि चेतना-प्रवाह, स्मृति-दृश्यों, स्वप्न, फैंटेसी और आत्म-विश्लेषण के सहारे निर्मित होता है। इस प्रकार उनकी कविता का स्वरूप "काव्यात्मक-उपन्यास" जैसा हो जाता है, जहाँ कविता का हर अंश यथार्थ की किसी न किसी गाँठ को खोलता है [1]।

मुक्तिबोध के यहाँ फैंटेसी भी पलायनवादी या कल्पनात्मक मनोरंजन का साधन नहीं है। यह फैंटेसी अँधेरे, ब्रह्मराक्षस, विचित्र रूपांतरणों, दु:स्वप्नों, अलौकिक प्रतीकों और असाधारण घटनाओं के माध्यम से उस "गहरे यथार्थ" को दृश्य बनाती है, जो सामान्य दृष्टि में अदृश्य रह जाता है। इस दृष्टि से मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ यथार्थवाद को एक नयी वैचारिक दिशा देती हैं, अर्थात् "अभ्यंतर-यथार्थवाद" [2]।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य यह समझना है कि मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में कथा-तत्व और फैंटेसी का पारस्परिक संबंध किस प्रकार यथार्थ की बहुविमीय अभिव्यक्ति को संभव बनाता है।

2. सैद्धांतिक पृष्ठभूमि: कथा-तत्व, फैंटेसी और आधुनिक यथार्थ-दृष्टि

कथा-तत्व का अर्थ केवल घटनाओं की बाह्य क्रमिकता से नहीं है; यह पात्र-विन्यास, दृश्य-रचना, आत्म-संवाद, स्मृति-दृश्यों, संवादों और स्थान-काल विन्यास की पूरी संरचना को समाहित करता है। आधुनिक कविता में कथा एक ऐसी संरचना बन गई है जो कवि को अनुभव की जटिलता को अधिक व्यापक रूप में प्रस्तुत करने का अवसर देती है। लम्बी कविता स्वभावतः कथात्मक क्षमता से भरी होती है, वह अनुभूति को क्षणिक बिम्बों में न समेटकर एक विस्तृत यात्रा के रूप में प्रस्तुत करती है [3]।

फैंटेसी को आधुनिक आलोचना में दो रूपों में पढ़ा गया है, एक, पलायनवादी, और दूसरा, आलोचनात्मक। मुक्तिबोध की फैंटेसी स्पष्ट रूप से आलोचनात्मक है, वह यथार्थ को छुपाती नहीं, बल्कि उसकी भीतरी संरचना, दबी हुई शक्तियों और विकृतियों को उजागर करती है। अतियथार्थवाद, प्रतीकवाद और स्वप्न-रचना यहाँ उस अंत:संसार को दृश्य बनाते हैं, जो सामाजिक-ऐतिहासिक प्रक्रियाओं से गहराई से जुड़ा होता है [4]।

मुक्तिबोध की आलोचकीय लेखनी इस बात की पुष्टि करती है कि उनके लिए यथार्थ का अर्थ वह नहीं जो सतह पर दिखाई देता है, बल्कि वह जो छिपा हुआ है, जिसमें मध्यवर्गीय कायरता, वैचारिक द्वंद्व और सामाजिक विषमता की भयावहता मौजूद है। इस "भीतरी यथार्थ" तक पहुँचने के लिए फैंटेसी उनके लिए अनिवार्य साधन बन जाती है [5]।

© Copyright @ Authors

3. मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ: संरचना और सामाजिक संदर्भ

मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ स्वतंत्रता-उत्तर भारत के मध्यवर्गीय बौद्धिक परिवेश से गहराई से संबद्ध हैं। यह वह समय था जब समाज पर पूँजीवाद, नौकरशाही, राजनीतिक भ्रष्टाचार और सांस्कृतिक विघटन का प्रभाव तीव्र था। मुक्तिबोध स्वयं इसी मध्यवर्गीय बौद्धिक वर्ग का हिस्सा थे, इसलिए उनकी कविताएँ बाहरी आलोचना के बजाय "भीतर से की गई आलोचना" प्रतीत होती हैं [6]।

अँधेरे में उनकी सबसे महत्वपूर्ण लम्बी कविता है। इस कविता में कथावाचक की यात्रा कई स्थानों से होकर गुजरती है, अकेली सड़कें, अँधेरा, शहर की भीड़, दफ़्तर, भ्रष्ट नौकरशाही, दैत्यीय प्रतीक, स्मृति-अनुभव, भय, अपराध-बोध। यह कविता किसी एक कथा-सूत्र पर आधारित नहीं है, बल्कि सैकड़ों सूक्ष्म दृश्यों, आत्म-प्रश्नों और प्रतीकात्मक प्रसंगों के माध्यम से आगे बढ़ती है [7]।

भूल-गलती और नाशदेवता जैसी अन्य लम्बी कविताएँ इसी स्व-अन्वेषण और सामाजिक-वैचारिक समीक्षा की प्रक्रिया को आगे बढ़ाती हैं, जहाँ कवि-कथावाचक स्वयं अपने वर्ग, अपने समाज और अपनी बौद्धिक जिम्मेदारी पर प्रश्न उठाता है [8]।

इस प्रकार मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ एक विशेष ऐतिहासिक क्षण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हैं, जहाँ कथा और फैंटेसी मिलकर मध्यवर्ग की "संरचनात्मक आत्म-आलोचना" बन जाती है।

4. कथा-तत्व: घटनाएँ, पात्र, संवाद और चेतना-प्रवाह

मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में कथा-तत्व केवल एक बाहरी संरचना भर नहीं है, बल्कि यह उनकी कविताओं की वैचारिक रीढ़ और आत्मगत अनुभूति का केंद्रीय विस्तार है। उनकी कविता किसी पारंपरिक कथा की तरह रैखिक, सरल और सतही ढंग से घटनाओं को नहीं प्रस्तुत करती; बल्कि वह कथात्मकता को एक विचार-प्रवाह, अनुभव-संघर्ष और आत्म-समीक्षा की बहुस्तरीय संरचना में ढाल देती है। इस कारण उनकी लम्बी कविता एक साथ कई आयामों में खुलती है, ऐतिहासिक, सामाजिक, मानसिक, दार्शनिक और आत्म-वैचारिक। कथा यहाँ केवल उस "जगत" को नहीं दिखाती जिसमें कवि रहता है, बल्कि उस "मैं" को भी उघाड़ती है जो इस जगत के भीतर लगातार प्रश्नों, दुविधाओं, संघर्षों और आत्म-निरीक्षण से गुजर रहा है।

(*क*) कथावाचक—"मैं" की सक्रिय और संघर्षशील भूमिका

मुक्तिबोध की काव्य-यात्रा में "मैं" केवल देखने वाला, वर्णन करने वाला या अनुभवों का साधारण वाहक नहीं है; वह स्वयं कविता का एक संघर्षशील पात्र है, जिसके भीतर विचारों, स्मृतियों, भय, अपराध-बोध और आकांक्षाओं का भारी ताप लगातार उबलता रहता है। यह "मैं" एक साधारण बौद्धिक नहीं, बल्कि इतिहास और समाज से घिरा हुआ वह व्यक्ति है, जिसे अपनी ही कमजोरियों, अपने वर्गीय स्वार्थों और नैतिक असमर्थताओं से मुठभेड़ करनी पड़ती है। यही

© Copyright @ Authors

ISSN: 2348-473X
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 6.74)
Journal Website: www.nrjss.in

कारण है कि मुक्तिबोध की कविता में "मैं" बार-बार स्वयं को कठघरे में खड़ा करता है, स्वयं से प्रश्न करता है, और समाज की संपूर्ण संरचना से टकराता हुआ प्रतीत होता है [9]।

यह "मैं" किसी नायक की तरह निष्कलंक नहीं, बल्कि एक समस्या बनकर उभरता है, एक ऐसा पात्र जो स्वयं की सीमाओं और अपने वर्ग की कायरताओं को पहचानते हुए भी उनसे मुक्त नहीं हो पाता। उसकी यह जटिलता कथानक को गहराई और आत्म-आलोचनात्मक स्वर प्रदान करती है।

(ख) घटनाओं की गैर-रैखिक, स्वप्नवत और चेतना-प्रवाह आधारित संरचना

मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में घटनाएँ किसी उपन्यास की तरह क्रमिक, तार्किक या योजनाबद्ध तरीके से नहीं घटतीं। वे स्वप्न-दृश्यों की तरह अचानक उत्पन्न होती हैं, बदलती हैं, रूपान्तरित होती हैं और कई बार बिना किसी स्पष्ट संक्रमण के एक-दूसरे में ढल जाती हैं। यह "गैर-रैखिक संरचना" मुक्तिबोध के उस अनुभव-बोध को व्यक्त करती है जिसमें वास्तविक जीवन किसी सीधी लकीर में नहीं चलता, बल्कि असंख्य तनावों, स्मृतियों, विडंबनाओं और ऐतिहासिक दबावों के सहारे लगातार टूटता-बिखरता, फिर से बनता और नई दिशा ग्रहण करता है [10]।

कविता में समय और स्थान भी स्थिर नहीं रहते, वे बार-बार अपने रूप बदलते हैं: कभी कथावाचक अँधेरी सड़क पर है, कभी किसी भ्रष्ट दफ़्तर में, कभी भयावह अवचेतन के किसी कंदरानुमा दृश्य में। यह अविराम परिवर्तन कविता को एक गतिशील मानसिक-यात्रा का रूप देता है, जहाँ बाहरी घटनाएँ और भीतरी अनुभव एक-दूसरे में प्रवेश कर जाते हैं।

(ग) पात्रों का प्रतीकात्मक और वैचारिक विन्यास

मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में परंपरागत अर्थों में "वर्ण" नहीं मिलते। पात्र किसी कथा-नाटक के जीवंत, ठोस, व्यक्तिगत व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित नहीं होते, बल्कि वे समाज की मानसिकताओं और ऐतिहासिक शक्तियों का प्रतीक रूप बनकर सामने आते हैं।

भीड़, मुखौटे पहने हुए लोग, दैत्य, नौकरशाह, शिक्षक, नेता, बौद्धिक मित्र, ये सभी पात्र वास्तविक जीवन के सामाजिक रूपों के प्रतीक हैं।

भीड़—अचेतन, प्रतिक्रियाशील, दिशा-विहीन समाज का रूप

दैत्य/ब्रह्मराक्षस—भय, अपराध-बोध, सत्ता-भ्रष्टाचार और बौद्धिक कायरता का संलयित प्रतीक

© Copyright @ Authors

ISSN: 2348-473X
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 6.74)
Journal Website: www.nrjss.in

नौकरशाह—सिस्टम की अमानवीयता

मित्र—वर्गीय आत्म-संतोष और बौद्धिक सीमाओं का संकेत

इन पात्रों का प्रतीकात्मक विन्यास कविता को एक दार्शनिक-वैचारिक ढाँचा प्रदान करता है और यह स्पष्ट करता है कि मुक्तिबोध कथा के माध्यम से मनुष्य की निजी समस्याओं से अधिक सामाजिक संरचना की अंत:क्रियाओं को सामने लाना चाहते हैं [11]।

(घ) संवाद, आत्म-संवाद और बहु-स्वर का निर्माण

मुक्तिबोध की कथात्मकता की सबसे अनूठी विशेषता है कविता के भीतर उभरने वाला संवाद। यह संवाद कई स्तरों पर चलता है:

कथावाचक का स्वयं से संवाद—जहाँ वह अपने ही मनोविश्व और नैतिक प्रश्नों पर बहस करता है;

अदृश्य शक्तियों से संवाद—जो प्रतीकात्मक सत्ता-शक्तियों या ऐतिहासिक दबावों का प्रतिनिधित्व करती हैं;

स्मृति-संवाद—जहाँ बीते हुए अनुभव और घटनाएँ वर्तमान चेतना में सक्रिय हो उठती हैं; संवेदनात्मक संवाद—जहाँ दृश्य, ध्वनि, अंधेरा, रास्ता, दैत्य आदि वस्तुएँ "पात्रों" की तरह कथावाचक से बात करती प्रतीत होती हैं।

इस बहु-स्वरिता के कारण मुक्तिबोध की कविता केवल एक आवाज़ की नहीं, बल्कि कई आवाज़ों, कई चेतनाओं, का सम्मिलित संघर्ष बन जाती है [12]। कविता इस तरह गहन दार्शनिक, नाटकीय और आत्म-अन्वेषणात्मक रूप ग्रहण करती है, जो हिंदी में अत्यंत विरल है।

इन सभी उपतत्वों, सक्रिय और संघर्षशील "मैं", गैर-रैखिक घटनाएँ, प्रतीकात्मक पात्र और बहुस्तरीय संवाद, से मुक्तिबोध की लम्बी कविता एक ऐसा कथानक-लोक निर्मित करती है, जिसमें बाहरी और आंतरिक संसार के बीच कोई कठोर विभाजन नहीं रहता। दोनों एक-दूसरे में घुल-मिलकर उस व्यापक यथार्थ को रचते हैं जिसे मुक्तिबोध अपने समकालीन समाज में देख रहे थे, एक ऐसा यथार्थ जो केवल विवरण से नहीं, बल्कि संघर्ष, विडंबना, आत्म-समीक्षा और फैंटेसी के सम्मिश्रण से प्रकट होता है।

5. फैंटेसी और स्वप्न-रचना: यथार्थ का भीतरी रूप

मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में फैंटेसी और स्वप्न-रचना केवल सजावटी या "असली जीवन से बाहर" ले जाने वाली कलात्मक प्रक्रियाएँ नहीं हैं, बल्कि वे उस भीतरी यथार्थ को उजागर करने के साधन हैं जिसे प्रत्यक्ष, सीधी, रिपोर्टाज शैली की यथार्थवादी कविता प्रायः पकड़ नहीं पाती। यदि कथा को हम बाहरी संसार का मानचित्र मानें, जहाँ स्थान, पात्र, घटनाएँ, वर्ग-संबंध और सामाजिक-संरचना के ठोस रूप दिखाई देते हैं, तो फैंटेसी उसी संसार का "एक्स-रे" है, जो उस मानचित्र के भीतर छिपी दरारों, भय, दमनकारी संरचनाओं, अवचेतन प्रवृत्तियों और ऐतिहासिक

© Copyright @ Authors

ISSN: 2348-473X
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 6.74)
Journal Website: www.nrjss.in

अपराध-बोध को उभारकर सामने रख देती है। फैंटेसी यहाँ किसी दूसरी दुनिया में उड़ जाने का माध्यम नहीं, बल्कि इसी दुनिया के "अतिरिक्त", दबा दिए गए, आयामों का साक्षात्कार है।

(क) अँधेरा एक दार्शनिक और ऐतिहासिक प्रतीक के रूप में लम्बी कविता अँधेरे में का केंद्रीय बिम्ब "अँधेरा" है, जो केवल प्रकाश-अभाव, रात या भौतिक अंधकार का सूचक नहीं है। मुक्तिबोध का अँधेरा एक घना, चिपचिपा, सर्वव्यापी, ऐतिहासिक–नैतिक अँधेरा है, जिसके भीतर जीते हुए पात्रों की दृष्टि धुंधला गई है, विवेक सुन्न हो गया है और नैतिक संवेदना लगभग समाप्तप्राय हो चुकी है [13]। इस अँधेरे में चलते हुए कथावाचक को जो डर, असुरक्षा और व्यर्थता का अनुभव होता है, वह केवल किसी अकेली रात के मनोभाव नहीं, बल्कि उस पूरे सामाजिक ढाँचे की परिणति है जिसमें स्वतंत्रता, लोकतंत्र और प्रगति के नाम पर एक गहरी अन्यायपूर्ण, शोषणकारी और आत्मसंतुष्ट व्यवस्था जड़ पकड़ चुकी है।

(ख) इस अँधेरे को दार्शनिक अर्थ में भी समझा गया है, यह ज्ञान के अवसान, सरोकारों के क्षरण और इतिहास–चेतना के कुंद हो जाने का प्रतीक है। प्रकाश का अभाव यहाँ "सत्य-दर्शन" की असमर्थता का द्योतक है; मनुष्य अपने समय और अपने वर्ग की वास्तविकता को देख नहीं पा रहा, या देखना ही नहीं चाहता। इस अर्थ में अँधेरा केवल बाहर नहीं, भीतर भी है, कथावाचक के मन में, उसकी वैचारिक आदतों में, मध्यमवर्गीय आरामपसंद स्वभाव में, और उस बुद्धिजीवी वर्ग की सामूहिक चेतना में जिसकी समीक्षा मुक्तिबोध बार-बार करते हैं [13]।

(ग) ब्रह्मराक्षस और दैत्यीय आकृतियाँ: विकृत मध्यवर्गीय चेतना के रूपक

मुक्तिबोध की रचनाओं में उपस्थित ब्रह्मराक्षस और अन्य दैत्यीय आकृतियाँ अक्सर पाठकों को किसी "अलौकिक" या "पौराणिक" जगत की याद दिलाती हैं, किंतु उनकी वास्तविक भूमिका इससे कहीं अधिक जटिल है। ये आकृतियाँ किसी बाहरी, अलग, रहस्यमय लोक की नहीं, बल्कि इसी समाज और विशेष रूप से मध्यवर्गीय बौद्धिक चेतना की विकृतियों की मूर्त रूप में अभिव्यक्ति हैं [14]।

ब्रह्मराक्षस, उदाहरण के लिए, केवल पुराणिक कथा से उठा हुआ पात्र नहीं, बल्कि उस बुद्धिजीवी की प्रतिमा है जिसने अत्यधिक ज्ञान, शक्ति और वैचारिक पूँजी तो अर्जित कर ली, पर अपने को जनता से, सामूहिक संघर्ष से और ऐतिहासिक जिम्मेदारी से काट लिया। ज्ञान, शक्ति और भय का यह संलयन एक ऐसी भयानक सत्ता को जन्म देता है जो एक ओर तो आकर्षक है, क्योंकि वह "ऊँचे" ज्ञान और "विशेष" स्थिति का दावा करती है, और दूसरी ओर आतंककारी है, क्योंकि वह जन-विरोधी और इतिहास-विरोधी है [14]।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2348-473X
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 6.74)
Journal Website: www.nrjss.in

दैत्यीय आकृतियाँ इस अर्थ में "बाहरी राक्षस" नहीं, बल्कि आत्म-राक्षसीकरण की प्रक्रियाएँ हैं। जब मध्यवर्ग सत्ता संरचनाओं के साथ समझौता करता है, शोषण से लाभ उठाता है, पर फिर भी स्वयं को "संस्कृति-वाहक" या "बौद्धिक अग्रदूत" घोषित करता है, तब उसकी चेतना के भीतर एक नैतिक और वैचारिक राक्षस पैदा होता है। फैंटेसी की दुनिया में यह राक्षस दृश्य, स्पर्श्य और भयावह रूप में सामने आ जाता है, जिससे उस आत्म-विकृति का सामना टाला नहीं जा सकता [14]।

अतियथार्थवादी दृश्य-रचना और सामाजिक–मनोवैज्ञानिक यथार्थ

मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में बार-बार ऐसे दृश्य आते हैं जो प्रथम दृष्टि में "अतियथार्थवादी" लगते हैं, जैसे दफ़्तर का अचानक एक अँधेरे, भुतहा परिदृश्य में बदल जाना; सुरक्षित दिखने वाली सड़क का अचानक गड्ढे, खड्ड या खाई में रूपान्तरित होना; किसी भरोसेमंद मित्र, सहकर्मी या परिचित का अचानक दैत्यीय आकृति में बदल जाना; शहर के परिचित भवनों और गलियों का अचानक किसी डरावने, अजनबी भूलभुलैया की तरह प्रतीत होना [15]।

ये दृश्य केवल कल्पना की "कलाबाज़ी" नहीं हैं; वे उस सामाजिक–मनोवैज्ञानिक यथार्थ के रूपक हैं जिसे प्रत्यक्ष, सीधा विवरण पकड़ नहीं पाता। उदाहरण के लिए, दफ़्तर या संस्थागत जगह का अँधेरे और भयावहता में बदल जाना इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि नौकरशाही और संस्थागत सत्ता-तंत्र ने मनुष्य को जिस प्रकार असहाय, निरीह और वस्तु में बदल दिया है, वह वस्तुतः किसी दैत्यीय संरचना से कम नहीं [15]।'

इसी प्रकार सड़क का गड्ढे में बदल जाना उस जीवन-मार्ग के अचानक विफल हो जाने, भविष्य के अचानक ध्वस्त हो जाने, या "सुरक्षा" के भ्रम के टूट जाने का संकेत है। मित्र का दैत्य बन जाना वर्गीय हितों और वैचारिक पाखंड के कारण बनने वाले विश्वासघात का रूपक है, वह दिखाता है कि जिस पर हम भरोसा करते हैं, वही सत्ता और स्वार्थ के दबाव में हमारे विरुद्ध खड़ा हो सकता है [15]।

इस तरह अतियथार्थवादी दृश्य-रचना यथार्थ को धुँधला नहीं करती, बल्कि उसकी अंतिम नंगी सच्चाइयों को अत्यधिक तीखे प्रकाश में दिखाती है।

(घ) दु:स्वप्न, आत्म-आरोप और ऐतिहासिक जिम्मेदारी का संकट

मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में स्वप्न की प्रकृति सामान्य स्वप्न की न होकर दु:स्वप्न की है। कथावाचक बार-बार ऐसे दृश्यों से गुजरता है जिनमें पीछा किए जाने, गिरने, फँसने, डूबने, न देख पाने, न बोल पाने, या किसी अज्ञात शक्ति के सामने असहाय हो जाने की अनुभूति मिलती है। यह दु:स्वप्न केवल निजी भय का परिणाम नहीं; यह उस सामूहिक अपराध-बोध का काव्यात्मक रूप है जो मध्यवर्गीय बौद्धिक अपने ऐतिहासिक व्यवहार के कारण वहन कर रहा है।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2348-473X
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 6.74)
Journal Website: www.nrjss.in

कविता के अनेक प्रसंग कथावाचक की ऐसी अवस्थाएँ दिखाते हैं जहाँ वह स्वयं को दोषी मानता है, अपने वर्ग-समझौतों के लिए, क्रांतिकारी विकल्पों से पलट जाने के लिए, जनता के संघर्षों से कट जाने के लिए, या सुविधाजनक चुप्पी साध लेने के लिए। ये दु:स्वप्न उसे चैन से जीने नहीं देते; वे बार-बार उसे खुद के सामने खड़ा कर देते हैं, मानो कोई अदृश्य न्यायालय उसकी अंतरात्मा का मुक़दमा चला रहा हो।

इस प्रकार फैंटेसी और स्वप्न-रचना मुक्तिबोध के यहाँ यथार्थ को "विकृत" बनाकर नहीं, बल्कि "उजागर" करके प्रस्तुत करती हैं। वे यथार्थ की सतह को तोड़कर उसके भीतर छिपे भय, पाखंड, अपराध-बोध और ऐतिहासिक जिम्मेदारी के प्रश्नों को सामने लाती हैं, इसलिए यह फैंटेसी, वस्तुतः, यथार्थवाद का एक गहनतर रूप है, न कि उसका विरोध।

6. कथा और फैंटेसी का द्वंद्वात्मक संयोजन: यथार्थ का पुनर्गठन

कथा-तत्व और फैंटेसी मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में दो अलग-अलग दिशाओं या विकल्पों की तरह नहीं, बल्कि एक ही यथार्थवादी परियोजना के दो पूरक पक्षों की तरह उपस्थित हैं। अक्सर यह मान लिया जाता है कि कथा "यथार्थ" का, और फैंटेसी "कल्पना" या "अलौकिक" का क्षेत्र है; पर मुक्तिबोध की काव्य-दृष्टि इस द्वैत को तोड़ देती है। उनके यहाँ कथा और फैंटेसी दोनों मिलकर यथार्थ को इतना अधिक गहराई, तीव्रता और जटिलता से प्रस्तुत करते हैं कि पाठक के लिए "साधारण" यथार्थ की धारणाएँ ही बदल जाती हैं।

सबसे पहले, कथा यथार्थ की बाहरी संरचना देती है, स्थान, पात्र, घटनाएँ, सामाजिक परिस्थितियाँ, वर्ग-संबंध, ऐतिहासिक संदर्भ, और मध्यवर्गीय जीवन की रोज़मर्रा की स्थितियाँ। इन सबके बिना कविता न तो किसी ठोस समय में टिकती, न किसी पहचाने जा सकने वाले भूगोल में [16]। अँधेरे में के शहर, गलियाँ, दफ़्तर, भीड़, रेलगाड़ियाँ, राजनीतिक माहौल, ये सभी कथा के माध्यम से ही सामने आते हैं, और इन्हीं की वजह से पाठक यह पहचान पाता है कि कविता किसी काल्पनिक लोक में नहीं, इसी देश–समाज के भीतर घट रही है।

दूसरे, फैंटेसी इस बाह्य संरचना का "भीतरी अर्थ" खोलती है, वह दिखाती है कि इन स्थानों, पात्रों और घटनाओं के पीछे कौन से भय, अपराध-बोध, वर्गीय मानसिकताएँ, दमनकारी संरचनाएँ और ऐतिहासिक शक्तियाँ काम कर रही हैं [17]। दफ़्तर के दृश्य के पीछे दैत्यीय सत्ता, मित्र के पीछे वर्गीय विश्वासघात, अँधेरे शहर के पीछे नैतिक अवसान और ब्रह्मराक्षस के पीछे ज्ञान–सत्ता का विकृत रूप, ये सभी फैंटेसी के माध्यम से ही उभरते हैं।

तीसरे, कथा ऐतिहासिक यथार्थ की जानकारी देती है, वह यह बताती है कि कौन-सा वर्ग किस स्थिति में है, किस तरह का राजनीतिक वातावरण है, किस प्रकार का सामाजिक विघटन चल रहा है, और बौद्धिक वर्ग किस तरह की जीवन-स्थितियों से गुजर रहा है। लेकिन फैंटेसी उसी ऐतिहासिक यथार्थ की वैचारिक आलोचना करती है, वह यह दिखाती है कि इन सतही स्थितियों के भीतर मूल समस्या क्या है: शोषण की संरचना, विचारधारा का झूठ, वर्गीय स्वार्थ, आत्म-संतोष,

© Copyright @ Authors

ISSN: 2348-473X
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 6.74)
Journal Website: www.nrjss.in

और जनता से कटाव [18]। इस तरह कथा और फैंटेसी मिलकर "फैक्ट" और "क्रिटीक", दोनों को साथ-साथ उपस्थित करते हैं।

चौथे, दोनों मिलकर यथार्थ की "बहुस्तरीय अभिव्यक्ति" करते हैं, दिखने वाला भी, और न दिखने वाला भी। कथा के बिना कविता केवल फैंटेसी की धुंध बनकर रह जाती; फैंटेसी के बिना वह केवल समाजशास्त्रीय रिपोर्ट या नैतिक भाषण बन जाती। मुक्तिबोध इस द्वंद्वात्मक संयोजन के माध्यम से एक ऐसे यथार्थवाद तक पहुँचते हैं जो न तो सतही वर्णन में संतुष्ट है, न ही अमूर्त प्रतीकवाद में खो जाता है।

इसीलिए कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध का यथार्थवाद पारंपरिक यथार्थवाद नहीं है। यह "संघर्षरत यथार्थवाद" है, जहाँ कविता स्वयं को, अपने कथावाचक को और उसके वर्ग को कठघरे में खड़ा करती है; जहाँ सत्य किसी बाहरी वस्तु की तरह नहीं, बल्कि संघर्ष, आत्म-समालोचना और वैचारिक जोखिम के बीच से प्रस्फुटित होता है। कथा-तत्व और फैंटेसी मिलकर इस संघर्ष को काव्यात्मक रूप देते हैं, और यथार्थ को केवल "दिखाने" के बजाय "पुनर्गठित" करते हैं, ताकि पाठक उसे नए ढंग से देख सके, समझ सके और उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी को महसूस कर सके।

7. निष्कर्ष

मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ हिंदी कविता को कथा-संरचना और फैंटेसी दोनों की शक्ति से समृद्ध करती हैं। इन कविताओं में कथा मनुष्य और समाज के अनुभव का ऐतिहासिक परिदृश्य प्रस्तुत करती है, जबकि फैंटेसी उस ऐतिहासिक अनुभव के भीतर छिपे अंधकार, विडंबना, भय, अपराध-बोध और वैचारिक संघर्ष को उजागर करती है।

कथा और फैंटेसी का यह संयोजन यथार्थ की गहराई तक पहुँचने का सबसे सशक्त साधन बन जाता है। मुक्तिबोध के यहाँ फैंटेसी पलायन नहीं, बल्कि आलोचना है; कथा सजावट नहीं, बल्कि ऐतिहासिक साक्ष्य है। इन दोनों के माध्यम से वे "भीतरी यथार्थ", वह यथार्थ जो सामान्यत: अनदेखा रह जाता है, को दृश्य, संवेदनात्मक और दार्शनिक ऊँचाई प्रदान करते हैं।\

इस प्रकार मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ हिंदी साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति का एक अनूठा, जटिल और विशिष्ट प्रतिमान प्रस्तुत करती हैं, जो आगे की पीढ़ियों के कवियों और आलोचकों के लिए प्रेरक और चुनौतीपूर्ण दोनों है।

संदर्भ सूची

(क) मुक्तिबोध, ग. म. अँधेरे में. मुक्तिबोध रचनावली, खंड 3, पृ. 1–46. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1980।

(ख) शर्मा, रामविलास. आधुनिक हिंदी कविता की पृष्ठभूमि. पृ. 152–170. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1973।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2348-473X
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 6.74)
Journal Website: www.nrjss.in

(ग) सिंह, नामवर. कविता के नए आयाम. पृ. 95–118. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1968।

(घ) वाजपेयी, नंददुलारे. आधुनिक काव्य-चेतना. प्रयाग: लोकभारती प्रकाशन, 1962।

(ङ) मिश्र, रमाशंकर. मुक्तिबोध का काव्य-दर्शन. पृ. 92–110. प्रयागराज: लोकभारती, 1979।

(च) त्रिपाठी, विश्वनाथ. कविता की जमीन. पृ. 153–178. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1997।

(छ) मुक्तिबोध, ग. म. अँधेरे में, खंड 3, पृ. 7–28.

(ज) मुक्तिबोध, ग. म. भूल-गलती. रचनावली, खंड 2.

(झ) सिंह, मुरलीमनोहर प्रसाद. मुक्तिबोध की काव्य-चेतना. पृ. 112–135. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1995।

(ञ) शुक्ल, रामचंद्र. आधुनिक हिंदी साहित्य. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।

(ट) चक्रधर, अशोक. मुक्तिबोध: एक आलोचनात्मक अध्ययन. दिल्ली: राजकमल।

(ठ) माचवे, प्रभाकर. हिंदी कविता का आधुनिक रूप. भोपाल: मध्यप्रदेश साहित्य परिषद।

(ड) शास्त्री, विष्णुकांत. भारतीय काव्य-परंपरा. पृ. 201–230. दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन।

(ढ) "ब्रह्मराक्षस का शिष्य", मुक्तिबोध की कहानी। उदंती, दिसम्बर 2015।

(ण) "अँधेरे में", ऑनलाइन पाठ। कविता-कोश।

(त) गुप्ता, रामजी. आधुनिक हिंदी कविता के आयाम. दिल्ली: साहित्य भंडार।

(थ) वाजपेयी, अशोक. कला का जोखिम. पृ. 45–63. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

(द) निरंजन, तेजस्विनी. ध्वनि और आधुनिक कविता. इलाहाबाद: साहित्य भंडार।

© Copyright @ Authors